भगवान महावीर की वाणी में अपरिग्रह

प्रो. श्रीचन्द्र जैन

परिग्रह एक ऐसी गहन विकृति है जो न जीवन को समुन्नत बनने देती है और न यह राष्ट्रोन्नति को विकसित होने देती है। वस्तुतः परिग्रही देशद्रोही है, समाज शत्रु है एवं मानवता का कलंक है। आज तो सर्वत्र विनाश के कारण दिखाई दे रहे हैं इनका मूल कारण परिग्रह ही है। एक देश जब दूसरे राष्ट्र का विध्वंसक बनता है, उसके वैभव को मिटाना चाहता है या उसकी सुख-सुविधाओं का शोषण करने के लिए छटपटाता है तब यही समझना चाहिए कि वह स्वार्थी देश परिग्रही बन चुका है और इसीलिये वह स्वार्थांध है।

परिग्रह आत्म-ज्योति को इसी प्रकार धूमिल बनाता है जिस प्रकार श्यामल मेघ दिनकर की व्यापक ज्योति को धुँधला कर देता है। ऐसी स्थिति में परिग्रह विकार है, विनाश का उपकरण है, द्रोह का कारण है, शत्रुता का जनक है, एवं विश्व-बन्धुत्व का नाशक है। यही माया, विलासिता, लक्ष्मी, ममता, ऐश्वर्य-वैभव आदि अनेक रूपों में प्रदर्शित होकर जन जीवन के सहज स्वरूप को कलंकित करता है और विघटन के नाना भया-वह कूदृश्यों को धरती के आंगन में प्रदर्शित करता रहता है।

तृष्णा को नागिन कहा गया है जो परिग्रह की ओर मानव को इसी प्रकार आकृष्ट करती है जिस प्रकार दीपक की लौ पंतगों को अपनी ओर खींचती है। इसलिये सन्तों ने तृष्णा के परित्याग को आत्म विकास के लिए अनिवार्य बताया है। संत कबीर की वाणी भगवान् महावीर के उपदेशों से निरन्तर प्रभावित हुई है। कोई मत हो, कोई सम्प्रदाय हो, कोई धर्म हो, कोई ईमान हो, सबने सादे जीवन और उच्च विचारों की प्रशंसा की है।

विश्व की अशांति का प्रमुख कारण परिग्रह है, जो लोभ से समुत्पन्न होता है और शनैः शनैः यही भौतिक सुख-सुविधा के साधनों को अकारण ही एकत्रित करने के लिए इंसान के मानस में छटपटाहट भर देता है। मानव-मानव के बीच जो इतना भेद दिखाई दे रहा है उसका एकमात्र हेतु परिग्रह है। इसी लालसा ने धनी और दीन की दो ऐसी श्रेणियाँ बना दी हैं जो श्वानों की भाँति रात-दिन आपस में लड़ती रहती है। कविवर स्वर्गीय श्रीरामधारीसिंह दिनकर की ये निम्नस्थ पंक्तियाँ परिग्रह से उत्पन्न विभीषिकाओं को चित्रित करती हुई जनता के सामने विषमता के घिनौने कुरूपों को चेतावनी के रूप में अंकित करने में पर्याप्त हैं:—

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र,
भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर
जाड़े की रात बिताते हैं।
युवती की लज्जा वसन बेच,
जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक तब तेल फुलेलों पर,
पानी सा द्रव्य बहाते हैं।
जब तक मनुज मनुज का यह,
सुख भोग नहीं सम होगा।
शमित न होगा कोलाहल,
संघर्ष नहीं कम होगा।

परिग्रह अहिंसक बन ही नहीं सकता। क्योंकि परिग्रह हिंसा का ही दूसरा रूप है। जो परिग्रह में सलंग्न है वह घोर हिंसक, दुराचारी, व्यभिचारी और मायाचारी है।

आचार्य शव्यम्भव ने व्याख्या इस प्रकार की है—मुच्छा परिगहो वुतो नायपुत्तेण ताइणा। (दशवे ६।) किसी भी वस्तु में बंध जाना अर्थात् उसे अपनी मानकर उसकी ममता में लिप्त हो जाना तथा ममत्व के वश होकर आत्म-विवेक को खो बैठना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रह है। इस प्रकार किसी वस्तु को मोह-बुद्धिवश आसक्ति पूर्वक ग्रहण करना ही परिग्रह–परिसमन्तात् मोह बुद्ध्या गृह्यते स परिग्रहः। भगवान् महावीर की भाषा में आत्मा के लिए यदि कोई सबसे बड़ा बंधन है तो वह परिग्रह है–नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्व जीवाणं। प्रश्न व्याकरण सूत्र २।१। परिग्रह अर्थात् अर्थसंग्रह सम्पत्ति आदि पर ममत्व अपने आप में हिंसा है इसलिये परिग्रह को त्याग किये बिना अहिंसा का वास्तविक सौन्दर्य खिल नहीं सकता क्योंकि जहाँ परिग्रह है वहाँ हिंसा अवश्यम्भावी है।[1]

आचार्य उमास्वामी ने परिग्रह की व्याख्या करते हुए कहा है–मूर्च्छा परिग्रहः––मूर्च्छाभाव परिग्रह है। पदार्थ के प्रति हृदय की आसक्ति–ममत्व की भावना ही परिग्रह है।

समाज में विषमता के फैलते हुए जहर को मिटाने के लिए, रोकने के लिए अपरिग्रह ही एक अनिवार्य साधन है। इसके लिए प्रत्येक मानव को अपनी इच्छाएँ कम नहीं करनी चाहिए। तृष्णा को धीरे-धीरे घटाना चाहिए और आवश्यकताओं को कम से कम करना आवश्यक है। संग्रहवृत्ति दानवता को जन्म देती है। लोभ, क्लेश, कषाय, चिन्ता, उद्विग्नता आदि को निरन्तर बढ़ाने वाली यही संग्रहवृत्ति है। जिसका नियंत्रण सुख शांति का अनुपम साधन है। परिग्रह का समुचित त्याग समाजवाद का वास्तविक रूप कहा जा सकता है।

आवश्यकता से अधिक संग्रह करना चोरी है,
पाप है, महापाप है और इंसानियत का हनन है।

भगवान् महावीर की वाणी में अपरिग्रह का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है:––

(१)

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो।

(वस्तु के प्रति रहे हुए ममत्व-भाव को परिग्रह कहा है।)

(२)

नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि।
सव्व जीवाणं सव्व लोए॥

(विश्व के सभी प्राणियों के लिए परिग्रह के समान दूसरा कोई जाल-बंधन नहीं)

(३)

इच्छा हु आगास समा अणंतिया॥

(इच्छा आकाश के समान अनंत है)

(४)

बहुंपि लद्धुं न निहं
परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा।

(बहुत मिलने पर भी संग्रह न करें। परिग्रह-वृत्ति से अपने आपको दूर रखें)।

(५)

परिग्गह निविट्ठाणं, वेरं तेसिं पवड्ढई।

(जो परिग्रह-संग्रहवृत्ति में व्यस्त हैं, वे संसार में अपने प्रति वैर की ही अभिवृद्धि करते हैं)।

(६)

कामे कमाही, कमियं खु दुक्खं।

(कामनाओं का अंत करना ही दुःख का अंत करना है)।

(७)

जे ममाईअं महं जहाई से जहाइ ममाईअं।

(जो साधक अपनी ममत्व बुद्धि का त्याग कर सकता है वही परिग्रह का त्याग करने में समर्थ हो सकता है)।

(८)

एतदेव एगेसिं महव्वयं भवई।

(परिग्रह ही इस लोक में महाभय का कारण होता है)।

(९)

तिविहे परिग्गहे पण्णते तं जहा-
कम्म-परिग्गहे सरीर परिग्गहे
बाहिर भंड मत्त–परिग्गहे।

(परिग्रह तीन प्रकार का है–कर्म परिग्रह, शरीर परिग्रह, बाह्य भण्ड-भाण्डय उपकरण परिग्रह)।

(१०)

लोहस्सेस अणुप्फा सो मन्ने अन्नयरामवि।

(संग्रह करना यह अन्दर रहने वाले लोग की झलक है।)

("भगवान महावीर के हजार उपदेश, संपादक श्री गणेशमुनि शास्त्री" से साभार)

यह ध्रुव सत्य है कि परिग्रही मरने के बाद नरकगामी होता है और परिमित संग्रही मृत्यु के उपरान्त मनुष्य जन्म पाता है।

यदि हम शोषण को समाप्त करना चाहते हैं यदि हम विश्व-बन्धुत्व की भावना को मूर्त रूप देने के इच्छुक हैं और चारों ओर सुख शांति स्थापित करने के लिए लालायित हैं तो हमें अपरिग्रह-व्रत को शीघ्र ही अपना लेना चाहिए इसी में जन-जन का कल्याण है और यही भगवान् महावीर के अनुयायियों का आदि धर्म है।

□

१. श्री गणेशमुनि शास्त्री : अहिंसा की बोलती मीनारें, पृष्ठ ७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org